

यू. पी. राज्य

बनाम

धर्मेन्द्र सिंह और अन्य।

21 सितंबर, 1999

[सैयद शाह मोहम्मद कादरी और एन. संतोश हेगड़े, जे. जे।]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973/दंड संहिता, 1860: धारा 354 (3)/धारा 302-
मृत्युदंड- 5 व्यक्तियों (बच्चे और बड़े) बदला लेने के लिए-रात में हमला
किया गया जब पीड़ित सो रहे थे- कई छोटे कारित की गई। लड़की के
शरीर के निचले हिस्से को उघाड़ दिया-निचली अदालत ने उत्तरदाताओं को
हत्या के अपराध के लिए दोषी ठहराया और उन्हें दुर्लभ से दुर्लभ प्रकरण
होने से मौत की सजा सुनाई-अपील और मौत की सजा के संदर्भ में, उच्च
न्यायालय ने दोषसिद्धि की पुष्टि की लेकिन तीन साल से अधिक समय से
मौत की कोठरी में बंद उत्तरदाताओं के तथ्य को देखते हुए मौत की सजा
को आजीवन कारावास में बदल दिया-अपील पर, अभिनिर्धारित: उच्च
न्यायालय ने तथ्यात्मक रूप से गलत कहा कि उत्तरदाता पिछले तीन वर्षों
से मौत की कोठरी में थे- तीन साल से मौत की कोठरी में बंद व्यक्तियों
इस आधार पर मौत की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने

का कोई कानून नहीं है-- पीड़ितों पर हमले के भयावह तरीके से पता चलता है कि हत्या का कार्य पूर्व नियोजित, मूर्खतापूर्ण और मानवीय तर्क से परे था-5 व्यक्तियों को 53 घाव दिए गए-किया गया अपराध दुर्लभतम से दुर्लभतम मामला था-इसलिए निचली अदालत द्वारा दी गई मौत की सजा की पुष्टि हुई।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973/भारत का संविधान: धारा 377(3) और 386 (सी) (iii)/अनुच्छेद 136-धारा 377(3) केवल उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के मामले में लागू होती है-संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील पर लागू नहीं होती है-हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय प्रक्रिया को निष्पक्ष बनाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अलावा धारा 377(3) सहित सीआरपीसी में पाए जाने वाले सिद्धांतों को ध्यान में रखेगा।

शिकायतकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के दादा से आर-1 के परिवार से संबंधित पारिवारिक घर का एक हिस्सा खरीदा। उक्त खरीद के बाद शिकायतकर्ता का परिवार उसी घर में आर-1 के परिवार के साथ रहने लगा। आर-1 ने उक्त खरीद के लिए नाराजगी जताई क्योंकि वह खुद चाहता था की वही खरीदें। उत्तरदाता नंबर 2, एक कानून का छात्र, शिकायतकर्ता की 15 साल की भतीजी पर बुरी साजिश रच रहा था। अपनी वासना को पूरा करने के लिए, घटना से 4-5 दिन पहले, आर-2 ने उक्त लड़की के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की। आर-2 की धमकी के

बावजूद, युवा लड़की ने शिकायतकर्ता को इस बात की शिकायत जिसके परिणामस्वरूप आर-2 की पिटाई हुई। बदला लेने के लिए आर-1 और आर-2, के साथ चार अन्य लोगों के समर्थन से शिकायतकर्ता के परिवार के सभी पांच व्यक्तियों की जब वे सो रहे थे और उन्हें कई चोटें कारित कर मृत्यु कारित की। पीड़ितों में 75 वर्ष की आयु का एक वृद्ध, 32 वर्ष की आयु की एक महिला, 12 वर्ष की आयु के दो लड़के और 15 वर्ष की उक्त लड़की शामिल हैं। निचली अदालत ने उत्तरदाता को दोषी ठहराते हुए उन्हें मौत की सजा सुनाई और मामले को "दुर्लभतम मामलों में से दुर्लभतम" करार दिया। अपील में, उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि की पुष्टि की, लेकिन इस आधार पर मौत की सजा को घटाकर आजीवन कारावास कर दिया कि उत्तरदाता पिछले तीन साल से अधिक समय से मौत की कोठरी में हैं। अतः राज्य द्वारा वर्तमान अपील और शिकायतकर्ता द्वारा एक सहयोगी याचिका।

अपीलार्थी-राज्य ने तर्क दिया कि निचली अदालत ने उत्तरदाताओं को धारा 354 (3) सीआरपीसी द्वारा अपेक्षित ठोस और स्वीकार्य कारण देने के बाद मृत्युदंड का फैसला सुनाया था और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के उक्त निष्कर्ष से सहमत होते हुए प्रत्यर्थियों की सजा को कम करने में कानून और तथ्य दोनों में गलती की।

उत्तरदाताओं ने तर्क दिया कि यदि न्यायालय राज्य की अपील की गुणा गण में जाने के लिए इच्छुक है तब न्यायालय को धारा 377 (3) और 386 (द.प्र.स.) के प्रभाव पर विचार करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि इस न्यायालय द्वारा राज्य की अपील पर विचार करने की स्थिति में, वे न केवल ऐसी सजा को बढ़ाने के खिलाफ कारण दिखाने के लिए थे, बल्कि उन्हें पूरी तरह से बरी करने या सजा को कम करने के लिए अनुरोध करने का भी अधिकार रखते हैं।

अपीलों को अनुमति देते हुए, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया।

1.1. उच्च न्यायालय ने मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार कर तथ्यात्मक और अनुमानित दोनों रूप से गलती की। सबसे पहले ये उत्तरदाता तीन साल से मौत की कोठरी में नहीं थे और न ही ऐसा कोई कानून है जो कहता है कि कोई व्यक्ति मौत की कोठरी में तीन साल के लिए होने से ही वस्तुतः मौत की सजा को कम करने का हकदार है। हालांकि यह सच है कि सभी उचित अवधि से अधिक लंबी सुनवाई या मौत की सजा का निष्पादन किसी देने वाले मामले में मौत की सजा को कम करने के लिए आधार हो सकता है, लेकिन कानून में सिद्धांत के रूप में निर्धारित करना या इस तथ्य पर निष्कर्ष निकालना कि ऐसे मामले जहां अभियुक्त व्यक्ति तीन साल या उससे अधिक समय से हिरासत में हैं, भले ही मामले के तथ्य अन्यथा मौत की सजा की मांग करते हैं, मौत की सजा देना अनुचित मानना अत्यधिक गलत होगा। यदि इस मामले में

उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को एक सही सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाता है तो व्यावहारिक रूप से किसी भी हत्या के मामले में मौत की सजा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि इस देश में आम तौर पर हत्या का मुकदमा चलता है और मौत की सजा की पुष्टि में तीन साल से अधिक का समय लगता है। [62- सी; डी; ई]

त्रिवेणीबेन बनाम. गुजरात राज्य, [1988] 4 एस. सी. सी. 574, पर निर्भर था।

1.2. यह न्यायालय आम तौर पर सजा में हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि ये कोई अवैधता न हो या इसमें सिद्धांत का कोई प्रश्न शामिल न हो। यह कानून का सिद्धांत है कि सजा का प्रश्न विवेकाधिकार का विषय है और यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि जब विवेकाधिकार का उचित रूप से प्रयोग न्यायिक आधार पर किया गया है एक अपीलीय न्यायालय को अभियुक्त के नुकसान में बहुत मजबूत और ठोस कारणों को छोड़कर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उच्च न्यायालय के फैसले का आधार इस हद तक कि उसने निचली अदालत द्वारा दी गई मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार कर दिया है, तथ्यात्मक रूप से गलत है और स्वीकृत कानूनी सिद्धांतों के खिलाफ है। नतीजतन, वह अपने विवेक का प्रयोग स्वीकृत न्यायिक आधार पर करने में विफल रहा है। निचली अदालत ने न केवल उत्तरदाता के संबंध में मौत की सजा देने के लिए ठोस कारण दिए

थे, बल्कि उच्च न्यायालय भी, वास्तव में, इस संबंध में निचली अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत था। [62- जी; एच; 63-सी]

1.3. अभियोजन पक्ष के मामले से पता चलता है कि उत्तरदाताओं ने अपने शैतानी इरादों के कारण शिकायतकर्ता को सबक सिखाने की साजिश रचकर परिवार के ऐसे सदस्यों की हत्या करके जो कमजोर और असहाय थे। यह हमले के समय से स्पष्ट है जब परिवार के अन्य सक्षम सदस्य घर से दूर थे और केवल वृद्ध थे और कमजोर लोग घर में अकेले रहे। यह भी तथ्य कि उन्होंने उनके चार दोस्तों की मदद लेने से पता चलता है कि उनका इरादा शिकायतकर्ता के परिवार के अधिक से अधिक सदस्यों को मारने का था, चाहे पीड़ित उनके प्रतिशोध का कारण थे या नहीं। मृतक पर हमले का भयावह तरीका, जो पोस्टमॉर्टम से स्पष्ट है रिपोर्ट से पता चलता है कि विचाराधीन कार्य पूर्व नियोजित, मूर्खतापूर्ण, कायरतापूर्ण और सभी मानवीय तर्कों से परे था क्योंकि 5 मृत व्यक्ति पर 53 घाव लगाए गए थे; प्रत्येक को औसतन कम से कम 10 घाव दिये हैं। हमलों में शरीर के ऐसे हिस्सों को लगातार निशाना बनाया गया जहां एक भी वार सामान्य रूप से, मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त होता। पीड़ित लड़की के शरीर के निचले हिस्से को उघाड़ना का तथ्य से मन की विकृति दिखती है जो हताश पुरुषों के मन की मानवीय संवेदनशीलता का अभाव को बताती है। सामग्री की एक समग्र परीक्षा अभिलेख से पता चलता है कि विचाराधीन बर्बर

अपराध को केवल एक दुर्लभतम मामला ही कहा जा सकता है। [64- डी; ई; एफ; जी]

3 एस. सी. सी 625, विशिष्ट।

1.4. यह तर्क कि उत्तरदाताओं ने न्यायसंगत रूप से स्वीकार किया है उच्च न्यायालय द्वारा मृत्युदंड की पुष्टि करने से इनकार करने पर जीवित रहने की उम्मीद, कायम नहीं रह सकती है। हमारी जैसी न्यायिक प्रणाली में जहां न्यायालयों का पदानुक्रम है, निर्णयों को उलटने की संभावना अपरिहार्य है, इसलिए, किसी अभियुक्त की अपेक्षाएं सजा बढ़ाने की अपील में हस्तक्षेप करने के लिए एक शमन कारक नहीं हो सकती हैं, जहां कानून में इसकी मांग की जाती है। [66- सी; डी]

2.1. धारा 377 (3) सीआरपीसी के अवलोकन से पता चलता है कि यह प्रावधान यह केवल तभी लागू होता है जब मामला उच्च न्यायालय के समक्ष होता है और यह इस न्यायालय पर तब लागू नहीं होता है जब संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सजा बढ़ाने की अपील की जाती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आपराधिक मामलों में इस न्यायालय में अपील सीआरपीसी के तहत धारा 379 सीआरपीसी के तहत आने वाले मामलों को छोड़कर प्रदान नहीं की गई है। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय में अपील संहिता के तहत वैधानिक अपील के समान नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत यह न्यायालय एक नियमित

अपील न्यायालय नहीं है जिससे एक अभियुक्त अधिकार के रूप में आ सकता है। यह एक असाधारण अधिकार क्षेत्र है जिसका उपयोग केवल असाधारण मामलों में ही किया जा सकता है जब इस न्यायालय का समाधान हो जाता है कि उसे न्याय की गंभीर या गंभीर विफलता को रोकने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए, जो कि साक्ष्य के विवेचन में केवल त्रुटि से अलग है। इस अधिकारिता का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय प्रक्रिया के नियमों से बाध्य नहीं है जो नीचे दिए गए न्यायालयों पर लागू होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अपने विवेक से सीमित है। धारा 377 (3) द.प्र.सं., संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील पर लागू नहीं होती है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत एक अपील के निपटारे के लिए एक प्रक्रिया को ढालते समय धारा 377 (3) के तहत उन सिद्धांतों सहित संहिता में पाए जाने वाले सिद्धांतों के अनुरूप नहीं होगा। अपराधीक अपील के निपटारे के लिए लागू उच्चतम न्यायालय के नियमों के अलावा इस न्यायालय में अपील करते हुए, न्यायालय ऐसे समान सिद्धांतों को जो संहिता में पाए जाते हैं अपनाता है जिससे तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रक्रिया को एक "निष्पक्ष प्रक्रिया" बनाया जा सके। [58- एच; 59-ए; बी; सी; एफ; जी]

निहाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. (1965) एससी 26
और चंद्रकांत पाटिल आदि बनाम राज्य ने सी. बी. आई. आदि के माध्यम
से (1988) 3 एस. सी. सी. 38 पर भरोसा किया।

यू जे एस चोपड़ा बनाम बॉम्बे राज्य, ए. आई. आर. (1955) एस.
सी. 633, विशिष्ट।

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय: आपराधिक अपील नं. 982-983/
1999

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सीआरएल ए सं 2090,1995/2011 में
दिनांकित 19.8.97 को निर्णय और आदेश से।

डी. डी. ठाकुर, यू. आर. ललित, एम. एन. कृष्णमूर्ति, प्रमोद स्वरूप,
ए. एस. पुंडिर, आर. श्रीनिवासन, एन. एन. भट्ट, विजय प्रकाश, ललित
कुमार, विमल दवे, उपस्थित दलों के लिए जावेद एम. राव, गिरीश चंद्र, के.
एम. के. नायर, डॉ. रमेश हरितोश, रोहुल सिंह और विपिन नायर।

निर्णय द्वारा

संतोष हेगड़े, जे.-

सी.आर.एल.ए. संख्या 982-983/99 (@ विशिष्ट अनुमति याचिका
(दाण्डिक) संख्या 1712-13/98):

उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका में अनुमति दी गई।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा ए संख्या 2090/95 और 2011/95 दाण्डिक में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.8.1997 के विरुद्ध दायर की गई हैं। जिसमें उच्च न्यायालय ने संबंधित अपीलों में उत्तरदाताओं और 4 अन्य की दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए, मौत की सजा की पुष्टि के लिए विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा किए गए संदर्भ को खारिज कर दिया व उत्तरदाताओं के धारा 302 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए उक्त सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया। मामले में शिकायतकर्ता द्वारा दायर एक विशेष अनुमति याचिका संलग्न है जिससे ये अपीलें निकलती हैं। हम इससे अलग से निपटना उचित समझते हैं।

इन अपीलों में दो उत्तरदाता के साथ-साथ 4 अन्य व्यक्तियों पर आईपीसी की धारा 147/148/149/302 के तहत दंडनीय अपराधों का आरोप लगाया गया था, जिसमें पीतांबर सिंह उम्र लगभग 75 वर्ष, रामवती देवी उम्र लगभग 32 वर्ष, (रवि) रवींद्र और नरेंद्र दोनों की उम्र 12 साल और रीता की उम्र लगभग 15 साल की हत्याएं की गई थीं।)

इन अपीलों के निपटाने के लिए आवश्यक अभियोजन मामला, संक्षेप में बताया गया है:

शिकायतकर्ता- चंद्र मोहन ने यहां उत्तरदाता, धर्मेन्द्र के दादा से पारिवारिक घर का एक हिस्सा और परिवार की कुछ जमीन खरीदी थी और

उनके द्वारा खरीदे गए आवासीय भवन के उस हिस्से में अपने परिवार के साथ रहना शुरू कर दिया था। धर्मेन्द्र को यह खरीदारी नागवार गुजरी क्योंकि वह खुद भी यही खरीदने का इरादा कर रहे थे। इन अपीलों में दूसरा उत्तरदाता नरेंद्र, जो एलएलबी का छात्र बताया गया है, कुमारी रीता पर बुरे इरादे रखता था और इसके अलावा जब वह स्कूल जाती थी तो वह उसे लगातार छेड़ता था। अभियोजन पक्ष द्वारा कहा गया है कि अपनी हवस को पूरा करने के लिए, घटना से लगभग 4-5 दिन पहले, उसने उसके साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की थी और उसे उसके खिलाफ शिकायत करने की हिम्मत करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी थी। ऐसा कहा जाता है कि धमकी के बावजूद रीता ने अपने चाचा, शिकायतकर्ता से नरेंद्र के दुष्कर्म के बारे में शिकायत की, जिसके बाद शिकायतकर्ता और उसके भतीजे ने उक्त आरोपी नरेंद्र की पिटाई कर दी। यह धर्मेन्द्र और नरेंद्र द्वारा अपने स्वयं के कारणों से उत्पन्न नफरत की इस पृष्ठभूमि में उन्होंने शिकायतकर्ता के परिवार पर प्रतिशोध लेने के लिए अन्य आरोपियों का समर्थन प्राप्त किया, जो उनके करीबी दोस्त थे, जिसके परिणामस्वरूप 6 आरोपियों ने एक साथ 26 और 27 मई, 1994 की मध्यरात्रि को लगभग 3 बजे रात में हथियार छोंपकर कई चोटें मारकर सभी 5 व्यक्तियों की नींद में ही मौत हो गई। अभियोजन पक्ष द्वारा यह कहा गया है कि पी डब्लू एस 1 से 3 ने इन 6 आरोपियों को खून से सने हथियारों के साथ घटनास्थल से निकलते हुए देखा और पहचाना था। अभियोजन पक्ष द्वारा उनके समक्ष

रखी गई सामग्री पर विचार करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अभियोजन पक्ष ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोपों को साबित कर दिया है और उन्हें उक्त आरोपों के लिए दोषी ठहराया है, और उक्त व्यक्तियों को दोषी ठहराते हुए उन 4 आरोपियों को जो अब हमारे सामने नहीं हैं को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। दो आरोपी उत्तरदाताओं के संबंध में, जो अब हमारे सामने हैं, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से विद्वान न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उन्होंने एक अपराध किया था जिसे 'दुर्लभतम मामलों में से दुर्लभतम' कहा जा सकता है। इसलिए, कारण बताने के बाद, मौत की कड़ी सजा देने की कार्यवाही की गई।

मामले को आरोपी व्यक्तियों द्वारा अपील के माध्यम से और मौत की सजा की पुष्टि के लिए 'संदर्भ' के माध्यम से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में ले जाया गया था। उच्च न्यायालय ने दिनांक 19.8.1997 के अपने फैसले में सभी आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि को बरकरार रखा और अन्य आरोपी व्यक्तियों, जो यहां उत्तरदाता नहीं हैं, को दी गई सजा की पुष्टि करते हुए इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दो उत्तरदाता- धर्मेंद्र और नरेंद्र- क्रमशः 3.6.1994 और 28.5.1994 से मृत्यु कक्ष में बंद थे, जो कि 3 साल से अधिक की अवधि के लिए है निष्कर्ष पर पहुंचे कि मौत की सजा नहीं दी जानी चाहिए और परिणामस्वरूप, सजा को घटाकर आजीवन कारावास कर दिया गया।

उच्च न्यायालय के दोषसिद्धि की पुष्टि करने और सजा सुनाने के फैसले के खिलाफ, आरोपी ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (दाण्डिक) संख्या 73-75/98 को प्राथमिकता दी थी, जो 23.1.1998 को खारिज कर दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा यहां उत्तरदाताओं को दी गई मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार करने के आदेश के खिलाफ, राज्य ने उपरोक्त अपीलों को प्राथमिकता दी है और शिकायतकर्ता ने भी एक साथी याचिका को प्राथमिकता दी है, जिसे हम पहले ही कह चुके हैं कि हम अलग से निपटेंगे।

शुरुआत में, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि न्यायालय राज्य की अपील के गुणों में जाने के लिए इच्छुक है तो हमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 377(3) सपठित धारा 386(सी)(iii) के प्रभाव पर विचार करना चाहिए। उनका तर्क है कि यदि अपीलीय अदालत सजा के खिलाफ राज्य की अपील पर विचार करती है तो आरोपी के लिए यह खुला है कि वह न केवल ऐसी सजा को बढ़ाने के खिलाफ कारण बताए, बल्कि उसे पूरी तरह से बरी करने या कम करने की भी गुहार लगाए। हमें यह भी बताया गया कि संहिता की धारा 386 के प्रावधानों के मद्देनजर, एक अपीलीय अदालत के रूप में सजा को बढ़ाने के लिए अपील में, सजा में बदलाव भी किया जा सकता है। इस संबंध में उन्होंने यूजेएस चोपड़ा बनाम बम्बई राज्य मामले में इस न्यायालय के फैसले पर मजबूत भरोसा जताया।

संहिता की धारा 377(3) इस प्रकार है:-

"377. सजा के खिलाफ राज्य सरकार द्वारा अपील:

(1) xxxx

(2) xxxxxx

(3) दण्डादेश के विरुद्ध जब अपर्याप्तता के आधार पर अपील दायर की गई है, तो उच्च न्यायालय सजा तब तक नहीं बढ़ाएगा, जब तक आरोपी को ऐसी वृद्धि के खिलाफ कारण बताने का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया और कारण बताते समय, आरोपी अपनी दोषमुक्ति के लिए या दण्डादेश में कमी करने के लिए अभिवचन कर सकता है।"

इस धारा के अवलोकन से पता चलता है कि यह प्रावधान केवल तभी लागू होता है जब मामला उच्च न्यायालय के समक्ष होता है और यह इस न्यायालय पर लागू नहीं होता है जब संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सजा बढ़ाने की अपील की जाती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि संहिता की धारा 379 के अंतर्गत आने वाले मामलों को छोड़कर, आपराधिक मामलों में इस न्यायालय में अपील, संहिता के तहत प्रदान नहीं की जाती है। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय में अपील संहिता के तहत वैधानिक अपील के समान नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत यह न्यायालय अपील की कोई नियमित अदालत नहीं है,

जहाँ कोई अभियुक्त अधिकार के रूप में जा सकता है। यह एक असाधारण क्षेत्राधिकार है जो केवल असाधारण मामलों में ही प्रयोग किया जा सकता है जब यह न्यायालय संतुष्ट हो कि उसे न्याय के गंभीर न्यायहानि को रोकने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए, जो कि साक्ष्य की सराहना में केवल त्रुटि से भिन्न है। इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय निचली की अदालतों पर लागू प्रक्रिया के नियमों से बाध्य नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल स्वयं इस न्यायालय के निर्मित क्षेत्राधिकार से सीमित है (देखें निहाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य 2)। उक्त मामले को देखते हुए, हमारी राय है कि संहिता की धारा 373(3) संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील पर लागू नहीं होती है। अपने इस दृष्टिकोण का समर्थन हमें इस न्यायालय के एक फैसले चंद्रकांत पाटिल आदि बनाम सीबीआई आदि मामले में फैसले से प्राप्त है। जिसमें इस न्यायालय ने एक समान तर्क पर विचार करते हुए कहा था: "वर्तमान संहिता की धारा 377(3) में परिकल्पित अधिकार सरकार द्वारा अपर्याप्तता सजा के खिलाफ उच्च न्यायालय में प्रस्तुत अपील तक ही सीमित होगा। इसके विपरीत, चोपड़ा के मामले में उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जिस फैसले पर भरोसा किया, उससे उन्हें कोई मदद नहीं मिलेगी क्योंकि उस मामले में यह अदालत राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष सजा बढ़ाने के लिए दायर वैधानिक अपील में

बरी होने की गुहार लगाने के आरोपी के अधिकार से निपट रही थी, जो धारा के तहत ही उपलब्ध है।

इसका मतलब यह नहीं है कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील के निपटाने के लिए एक प्रक्रिया तैयार करते समय संहिता की धारा 373(3) के तहत संहिता में पाए गए सिद्धांतों के अनुरूप सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखेगा। इस न्यायालय में आपराधिक अपीलों के निपटाने के लिए लागू सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अलावा, न्यायालय संहिता में पाए गए ऐसे समान सिद्धांतों को भी अपनाता है ताकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रक्रिया को "निष्पक्ष प्रक्रिया" बनाया जा सके।

मौजूदा मामले में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने रिकॉर्ड पर मौजूद पूरी सामग्री पर विचार किया है और साथ ही उत्तरदाताओं को उस अपराध के लिए दोषी पाया है जिस का उन पर आरोप लगाया गया है। उक्त दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ, उत्तरदाताओं ने न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत एक विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, जिसे गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था, और उत्तरदाताओं ने उक्त बर्खास्तगी आदेश के खिलाफ कोई समीक्षा याचिका दायर करने का विकल्प नहीं चुना है। इस पृष्ठभूमि में हम उत्तरदाताओं के इस अनुरोध को स्वीकार करना उचित नहीं समझते हैं क्योंकि न तो मामले

के तथ्य और परिस्थितियां और न ही सार्वजनिक हित के लिए हमें ऐसा करना आवश्यक है।

इस तथ्य के प्रकाश में कि अपील मृत्यु की चरम सजा की मांग के लिए है, हमने साथी मामले में अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता को भी राज्य द्वारा अपील की योग्यता के बावत हमें संबोधित करने की अनुमति दी है, भले ही वह याचिका हो इन अपीलों को सुनवाई के लिए नहीं लिया गया। राज्य के साथ-साथ शिकायतकर्ता की ओर से, यह तर्क दिया गया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उत्तरदाताओं को मौत की सजा देते समय, संहिता की धारा 354 (3) के तहत आवश्यक ठोस और स्वीकार्य कारण दिए थे और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के उक्त निष्कर्ष से सहमत होकर कानून और तथ्य में इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गंभीर गलती हुई कि यहां उत्तरदाता क्रमशः 3.6.1994 और 28.5.1994 से यानी 3 साल से अधिक समय से मृत्यु कक्ष में बंद थे, इसलिए, यह मौत की सजा देना उचित नहीं है. यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय का यह तर्क न तो कानून में और न ही तथ्यों पर टिकने योग्य है। यह तर्क दिया गया है कि तथ्यात्मक रूप से उच्च न्यायालय ने यह कहने में गलती की थी कि उक्त व्यक्ति क्रमशः 3.6.1994 और 28.5.1994 से मृत्यु कक्ष में थे। हमें बताया गया कि 28.5.1994 और 3.6.1994 वो तारीखें हैं जब उत्तरदाताओं को विचाराधीन कैदियों के रूप में हिरासत में लिया गया था और वे मृत्यु कक्ष में नहीं थे।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इन अभियुक्तों को केवल 5.12.1995 को मौत की सजा सुनाई, जिसे 19.8.1997 को उच्च न्यायालय के फैसले द्वारा बदल दिया गया। यह तर्क दिया गया है कि इस अवधि को भी मृत्यु कक्ष में रहना नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अभी तक मौत की सजा की पुष्टि नहीं की गई थी। किसी भी दर पर, राज्य के अनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा मौत की सजा देने यानी 5.12.1995 और उच्च न्यायालय के फैसले यानी 19.8.1997 के बीच का समय-अंतराल 21 महीने (दो साल भी नहीं) हुआ, ऐसा प्रतीत होता है कि मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार करके उच्च न्यायालय खुद को गलत दिशा में निर्देशित किया है। यह भी तर्क दिया गया कि तथ्यों पर इन उत्तरदाताओं द्वारा अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ किया गया अपराध इतना घृणित और जघन्य अपराध है जिसे 'दुर्लभ से दुर्लभतम' मामला कहा जा सकता है जिसमें ये 2 उत्तरदाता अपराध के प्रमुख अपराधी हैं जिन्हें सत्र न्यायालय द्वारा उचित ही मृत्युदंड दिया गया। आगे यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष से सहमत है लेकिन गलत आधार पर सजा की पुष्टि करने से इनकार कर दिया है जो कानून में अस्थिर है, इसलिए, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें उच्च न्यायालय के फैसले को उलट दिया जाना चाहिए और सजा बढ़ा दी जानी चाहिए।

इसके विपरीत, उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि यह दोषसिद्धि के लिए भी उपयुक्त मामला नहीं है; मौत की

अत्यधिक सज़ा का मामला तो बिल्कुल भी नहीं है। यह तर्क दिया गया कि निचली दोनों अदालतों ने सभी संभावनाओं के विरुद्ध अनुमानों पर दोषसिद्धि को आधारित किया है। किसी भी दर पर, अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि 6 आरोपियों में से किसने वास्तव में मारपीट की है यानी व्यक्तिगत प्रत्यक्ष कृत्य जो स्थापित नहीं किए गए हैं। इसलिए, भले ही दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाए, लेकिन मृत्युदंड नहीं दिया जाना चाहिए। इस तर्क के समर्थन में, उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ने रोनी उफ रोनाल्ड जेम्स अलवारिस और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। यह भी तर्क दिया गया कि अन्यथा भी मामले के तथ्य, मौत की सजा देने की गारंटी नहीं देते हैं और इन दोनों उत्तरदाताओं ने उच्च न्यायालय के फैसले के साथ खुद को संतुष्ट कर लिया है, उन्हें जीवित रहने की उम्मीद है और उनकी यह उम्मीद नष्ट नहीं होनी चाहिए।

हमने इस मामले में पेश किए गए सबूतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन इस बात की जांच करने की सीमित सीमा तक किया है कि क्या मामला एक ऐसा मामला है जिसे दुर्लभतम मामलों में से एक कहा जा सकता है ताकि मौत की चरम सजा का प्रावधान किया जा सके। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मृत्युदंड देने के लिए विशेष कारण बताते हुए निष्कर्ष निकाला कि विचाराधीन अपराध एक जघन्य अपराध है जिसमें उत्तरदाताओं धर्मेंद्र और नरेंद्र के परपीड़क लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से 5 निर्दोष

मनुष्यों की मौत शामिल है। जिन्होंने परिवार के 5 सदस्यों को खत्म करके शिकायतकर्ता और उसकी भतीजी रीता के खिलाफ अपनी शिकायत का बदला लिया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मकसद के आधार पर और इस आधार पर चार अन्य आरोपियों के मामले को इन उत्तरदाताओं के मामले से अलग कर दिया कि ये उत्तरदाता अपराध के प्रमुख अपराधी थे। ऐसा देखा जा रहा है कि उच्च न्यायालय सेशन जज के इस तर्क से सहमत हो गया है। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कि आरोपी 3 साल से मौत की कोठरी में बंद हैं, सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया। इस स्तर पर, इस संबंध में उच्च न्यायालय का तर्क निकालना आवश्यक है:

“xxx अपीलकर्ता धर्मेन्द्र और नरेन्द्र क्रमशः 3.6.1994 और 28.5.1994 से, यानी तीन साल से अधिक समय से मृत्यु कक्ष में बंद हैं। नतीजतन अब विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें दी गई मौत की सजा की पुष्टि करना उचित नहीं होगा।”

उच्च न्यायालय ने तथ्यात्मक और अनुमानात्मक दोनों ही दृष्टियों से इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की है। सबसे पहले, ये उत्तरदाता 3 साल तक मृत्यु कक्ष में नहीं थे और न ही ऐसा कोई विधि है जो कहती है कि 3 साल तक मृत्यु कक्ष में रहने मात्र से स्वतः ही व्यक्ति मौत की सजा को कम करने का हकदार होगा। हालांकि यह सच है कि लंबे समय तक सुनवाई या सभी उचित अवधि से परे मौत की सजा का निष्पादन किसी

दिए गए मामले में मौत की सजा को कम करने का आधार हो सकता है, इसे कानून में एक सिद्धांत के रूप में निर्धारित करना या तथ्य पर कोई निष्कर्ष निकालना बेहद गलत होगा कि उन मामलों में मौत की सजा देना अनुचित है जहां आरोपी व्यक्ति 3 साल या उससे अधिक समय से हिरासत में हैं, भले ही मामले के तथ्य अन्यथा मौत की सजा की मांग करते हों। यदि इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए विचार को सही सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाए तो व्यावहारिक रूप से किसी भी हत्या के मामले में मौत की सजा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि इस देश में आम तौर पर एक हत्या के मुकदमे और मौत की सजा की पुष्टि में 3 साल से अधिक समय लगता है। इस न्यायालय एक संविधान पीठ के माध्यम से श्रीमती त्रिवेणी बेन आदि बनाम. गुजरात राज्य आदि में माना है: "मौत की सजा को अक्षम्य बनाने के लिए देरी की कोई निश्चित अवधि नहीं रखी जा सकती" यहां यह ध्यान देना उपयोगी है कि त्रिवेणी बेन के मामले में, यह न्यायालय सजा के क्रियान्वयन में देरी विचार कर रहा था और ना कि सजा नहीं देने पर, जो फांसी से काफी पहले की स्थिति है। इसलिए, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संदेह नहीं है कि विचारण न्यायालय द्वारा दी गई मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार करके उच्च न्यायालय ने अपने द्वारा दिए गए तर्क में गलती की है।

योग्यता के आधार पर सजा बढ़ाने के राज्य के मामले की जांच करने से पहले, हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यह न्यायालय आमतौर

पर सजा में हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि कोई अवैधता न हो या इसमें सिद्धांत का कोई प्रश्न शामिल न हो। हम कानूनी सिद्धांत के प्रति भी आश्वस्त हैं कि सजा का सवाल विवेक का मामला है और यह सुस्थापित है कि जब स्वीकृत न्यायिक सिद्धांतों के साथ विवेक का उचित रूप से प्रयोग किया जाता है, तो एक अपीलीय अदालत को बहुत मजबूत और ठोस कारणों से किसी अभियुक्त की हानि के अलावा हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हमने पहले इस हद तक देखा है कि उच्च न्यायालय के फैसले का आधार उसने विचारण न्यायालय द्वारा दी गई मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार कर दिया है, तथ्यात्मक रूप से गलत है और स्वीकृत कानूनी सिद्धांतों के विपरीत है। परिणामस्वरूप, यह स्वीकृत न्यायिक दिशा-निर्देशों के अनुरूप अपने विवेक का प्रयोग करने में विफल रहा है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या मौत की सजा देने के विचारण न्यायालय के फैसले को स्वीकार करने के लिए मजबूत कारण हैं और क्या ये कारण उच्च न्यायालय के फैसले को पलटने के लिए पर्याप्त मजबूत हैं।

हमने पहले ही देख लिया है कि विचारण न्यायालय ने इन उत्तरदाताओं के संबंध में मौत की अत्यधिक सजा देने के लिए ठोस कारण दिए हैं। हमने यह भी देखा है कि उच्च न्यायालय, वास्तव में, इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत है। इस संदर्भ

में, उच्च न्यायालय की टिप्पणियों को निकालना उपयोगी है जो इस प्रकार हैं:

“xxx चूंकि पूरे प्रकरण की योजना और तैयारी धर्मद्र और नरेंद्र द्वारा की गई थी; इसलिए वे 12 साल के दो लड़के, कुमारी रीता, शिकायतकर्ता की पत्नी रामवती और 70 साल का बुजुर्ग पीतांबर की पांच हत्याओं के लिए अत्यधिक दंड के पात्र हैं, उन्होंने बेहद क्रूर और नृशंस तरीके से हत्याएं कीं और पांच लोगों को 53 से ज्यादा चोटें पहुंचाईं। निचली अदालत ने नरेंद्र और धर्मद्र को मौत की कड़ी सजा देने में कोई त्रुटि नहीं की है, जो इस भयानक त्रासदी के पूरे प्रकरण के पीछे सहायक थे।”

उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को पढ़ने से यह आभास होता है कि गलत धारणा के नहीं होती तो उच्च न्यायालय द्वारा इन 2 उत्तरदाताओं को दी गई मौत की सजा की पुष्टि की होती।

उत्तरदाताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि अपराध के घटित होने के संबंध में भी निचली अदालतों के निष्कर्ष तथ्यों के विपरीत हैं। इसलिए, कम से कम, सजा देने के संबंध में, हमें इन अपीलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। जहां तक अपराध के घटित होने का सवाल है, उत्तरदाताओं द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका इस न्यायालय द्वारा खारिज

कर दी गई थी और नीचे की अदालतों के निष्कर्ष अंतिम हो गए हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हमने यह सुनिश्चित करने के सीमित उद्देश्य के लिए इस मामले में खुद सबूतों की जांच की है कि क्या इस मामले को दुर्लभतम मामलों में से एक माना जा सकता है, जिसमें मौत की अत्यधिक सजा का आह्वान किया जा सकता है; जहां उत्तरदाताओं की ओर से इस तर्क की पृष्ठभूमि दी गई कि अभियोजन पक्ष आरोपी व्यक्तियों के व्यक्तिगत प्रत्यक्ष कृत्यों को स्थापित करने में सक्षम नहीं है। इस मामले में अभियोजन पक्ष ने, जैसा कि नीचे की दो अदालतों द्वारा स्वीकार किया गया है, इस तथ्य को स्थापित किया है कि धर्मद्र की इच्छा के विरुद्ध शिकायतकर्ता द्वारा आवासीय हिस्से सहित पारिवारिक संपत्ति खरीदने से धर्मद्र ने द्वेष पाल रखा था। अभियोजन पक्ष ने यह भी स्थापित किया है कि नरेंद्र, हालांकि एक शिक्षित व्यक्ति था, जो घटना के समय एलएलबी की पढ़ाई कर रहा था। वह रीता के प्रति वासना का भाव रखता था और इस इच्छा को आगे बढ़ाने के लिए उसे छेड़ता था और घटना से कुछ दिन पहले भी उसने उसके साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की थी, जिसके परिणामस्वरूप रीता की शिकायत पर शिकायतकर्ता और उसके भतीजे ने नरेंद्र के साथ मारपीट की। अभियोजन पक्ष के इस मामले से पता चलता है कि इन दोनों व्यक्तियों ने अपने शैतानी मकसद को आगे बढ़ाने के लिए परिवार के उन सदस्यों की हत्या करके शिकायतकर्ता को सबक सिखाने की साजिश रची जो कमजोर और असहाय थे। यह हमले के समय से स्पष्ट है, जब परिवार

के अन्य सक्षम सदस्य घर से बाहर थे और केवल बुजुर्ग और कमजोर लोग ही घर में अकेले रह गए थे। साथ ही यह तथ्य कि उन्होंने अपने चार दोस्तों (अन्य आरोपियों) से मदद मांगी थी, इस तथ्य के बावजूद कि पीड़ित उनके प्रतिशोध का कारण थे या नहीं, यह दर्शाता है कि इरादा शिकायतकर्ता परिवार के अधिक से अधिक सदस्यों को मारने का था, मृतकों पर भयानक तरीके से हमला, जो कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट से स्पष्ट है, यह दर्शाता है कि विचाराधीन कृत्य पूर्व-निर्धारित, संवेदनहीन, कायरतापूर्ण और सभी मानवीय तर्कों से परे था, यहां तक कि 5 मृत व्यक्तियों को 53 घाव दिए गए थे; प्रत्येक को औसतन कम से कम 10 घाव झेलने पड़े। लगातार हमले शरीर के ऐसे हिस्सों पर किए गए जहां आम तौर पर एक भी वार मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त होता। रीता के शरीर के निचले हिस्से को खंडित करने से विकृति का एक तत्व सामने आया, जिसका श्रेय कुंठित पुरुषों के दिमाग को दिया जा सकता है, जिनमें मानवीय संवेदनशीलता का पूरी तरह से अभाव था। रिकॉर्ड पर सामग्री की समग्र जांच से पता चलता है कि विचाराधीन बर्बर अपराध को केवल 'दुर्लभतम' मामला ही कहा जा सकता है।

हालाँकि, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में रॉनी के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया कि भले ही हत्या के कृत्य को क्रूर माना जाए क्योंकि अभियोजन पक्ष व्यक्तिगत अभियुक्तों के कृत्यों स्थापित करने में विफल रहा है, इसलिए

मौत की सजा नहीं दी जानी चाहिए। हमने उक्त निर्णय का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। हमें नहीं लगता कि इस न्यायालय ने ऐसे किसी प्रस्ताव को पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया है। तथ्यों के दिए गए परिस्थिति में यह संभव है कि अदालत यह सोच सकती है कि ऐसे मामले में भी जहां मौत की सजा दी जा सकती है, उस मामले के विशिष्ट तथ्यों जैसे कि एक या अधिक आरोपियों के अन्य आरोपियों की तुलना में कम दोषी अपराधों के लिए जिम्मेदार होने की संभावना के कारण उसे देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, प्रत्येक आरोपी व्यक्ति के मामले को विभाजित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध न होने की स्थिति में, अदालत मौत की चरम सजा न देना ही समझदारी समझ सकती है। लेकिन फिर ऐसा निर्णय किसी विशेष मामले में साक्ष्य की उपलब्धता पर निर्भर करेगा। हमें नहीं लगता कि मौत की सजा देने का कोई सीधा-सीधा फॉर्मूला विकसित किया जा सकता है जो सभी मामलों पर लागू हो। सजा देने के सवाल पर प्रत्येक मामले के तथ्यों का अपना प्रभाव होगा। रोनी के मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर सजा पर अंकुश लगाने के लिए कारकों को कम किया, जो उक्त निर्णय के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है:-

“तथ्यों और परिस्थितियों से, यह अनुमान लगाना संभव नहीं है कि तीनों में से किसने कौन सी भूमिका निभाई। ऐसा हो सकता है कि एक की भूमिका दूसरों की तुलना में

अधिक दोषी रही हो और इसके विपरीत भी। जहां इस तरह के मामले में यह कहना संभव नहीं है कि किसका मामला "दुर्लभतम" मामलों में आता है, अगर मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए तो यह न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा। जबकि हमारे समक्ष अपीलों में विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने ठोस कारणों से इन दोनों उत्तरदाताओं के मामले को अन्य आरोपी व्यक्तियों से अलग कर दिया है। हम भी निम्न न्यायालयों के इस दृष्टिकोण से सहमत हैं। इसलिए, निवारण करने वाले कारकों के अलावा, रोनी के मामले (उपरोक्त) में जो दुविधा मौजूद थी, वह इस मामले में मौजूद नहीं है। रोनी के मामले में ही, इस न्यायालय ने उक्त मामले के पैरा 40 में अत्यधिक दंड लगाने में न्यायालय की भूमिका पर चर्चा करते हुए इस प्रकार कहा है: " हत्या का दोषी पाया जाने वाले व्यक्ति के लिए मौत की सजा का विकल्प चुनना, न्यायालय के लिए वास्तव में कठिन दायित्व है।" लेकिन किसी व्यक्ति को मौत की सजा देकर, अदालत कानून के आदेश को प्रभावी बना रही है जो सार्वजनिक हित में है, जबकि हत्या करने या हत्या करने की गुप्त जानकारी होने पर, भले ही यह किसी अन्य हत्या का प्रतिशोध हो, दोषी

इसका उल्लंघन कर रहा है। कानून जो जनहित के खिलाफ है”

इस न्यायालय की ये टिप्पणियाँ दर्शाती हैं कि उचित मामलों में मौत की सजा देना अदालतों का दायित्व है।

उत्तरदाताओं की ओर से दिया गया अंतिम तर्क उच्च न्यायालय के निर्णयों के बाद उत्तरदाताओं द्वारा की गई जीवित रहने की उम्मीद पर आधारित है। यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा मौत की सजा की पुष्टि करने से इनकार करने के बाद, उत्तरदाताओं ने जीवित रहने की उचित उम्मीद की है और इसलिए, हमें उक्त फैसले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हमें इस तर्क का कोई कानूनी आधार नहीं मिलता। हमारी जैसी न्यायिक प्रणाली में जहां अदालतों का पदानुक्रम है, निर्णयों को उलटने की संभावना अपरिहार्य है, इसलिए, किसी अभियुक्त की अपेक्षाएं सजा बढ़ाने की अपील में हस्तक्षेप करने के लिए एक कम करने वाला कारक नहीं हो सकती हैं यदि कानून में अन्यथा इसकी मांग की जाती है। हमले की क्रूरता, मारे गए व्यक्तियों की संख्या, पीड़ितों की उम्र और दुर्बलता, उनकी भेद्यता और शैतानी मकसद, रीता के शरीर पर विकृत कृत्यों को ध्यान में रखते हुए, कुल मिलाकर हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा न्यायोचित और सही थी। हमने इस मामले की सावधानीपूर्वक जांच की है और तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद, हमें यहां

उत्तरदाताओं के पक्ष में कोई राहत देने वाली परिस्थितियां नहीं मिलीं। इसलिए, हम इन अपीलों को अनुमति देकर उच्च न्यायालय के फैसले को उलटने, इन अपीलों में लागू सीमा तक उच्च न्यायालय के फैसले और आदेशों को रद्द करने और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई मौत की सजा की पुष्टि करने के लिए बाध्य हैं।

एसएलपी (सीआरएल) (3157-3158/99) (सीआरएल एमपी नंबर: 2445-46/98)

सीआरएल ए. संख्या 982-93/99 @ एसएलपी (सीआरएल) संख्या 1712-13/98), में हमारे द्वारा दिए गए फैसले के मद्देनजर। इस मामले में किसी आदेश की आवश्यकता नहीं है और तदनुसार इसका निपटारा किया जाता है।

(दाण्डिक) अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी आशिमा (आर. जे. एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी

संस्करण ही मान्य होगा।